मल्लिकाः नहीं, तुम काशी नहीं गये। तुमने संन्यास नहीं लिया। मैंने इसलिए तुमसे यहाँ से जाने के लिए नहीं कहा था। ....मैंने इसलिए भी नहीं कहा था कि तुम जाकर कहीं का शासन–भार सँभालो। फिर भी जब तुमने ऐसा किया, मैंने तुम्हें शुभकामनाएँ दीं–यद्यपि प्रत्यक्ष तुमने वे शुभकामनाएँ दीं–यद्यपि प्रत्यक्ष तुमने वे शुभकामनाएँ ग्रहण नहीं कीं।

ग्रन्थ को हाथों में लिये जैसे अभियोगपूर्ण दृष्टि से उसे देखती है।

मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही, परन्तु तुम मेरे जीवन में सदा बने रहे हो। मैंने कभी तुम्हें अपने से दूर नहीं होने दिया। तुम रचना करते रहे, और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ, मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है।

ग्रन्थ को घुटनों पर रख लेती है।

और आज तुम मेरे जीवन को इस तरह निरर्थक कर दोगे?

ग्रन्थ को आसन पर रखकर उद्विग्न दृष्टि से उसकी ओर देखती रहती है।

तुम जीवन से तटस्थ हो सकते हो, परन्तु मैं तो अब तटस्थ नहीं हो सकती। क्या जीवन को तुम मेरी दृष्टि से देख सकते हो? जानते हो मेरे जीवन के ये वर्ष कैसे व्यतीत हुए हैं? मैंने क्या–क्या देखा है? क्या से क्या हुई हूँ?

उठकर अन्दर का किवाड़ खोल देती है और पालने की ओर संकेत करती है।

इस जीव को देखते हो? पहचान सकते हो? यह मल्लिका है जो धीरे–धीरे बड़ी हो रही है और माँ के स्थान पर अब मैं उसकी देख–भाल करती हूँ। ...यह मेरे अभाव की सन्तान है। जो भाव तुम थे, वह दूसरा नहीं हो सका, परन्तु अभाव के कोष्ठ में किसी दूसरे की जाने कितनी–कितनी आकृतियाँ हैं! जानते हो मैंने अपना नाम खोकर एक विशेषण उपार्जित किया है और अब मैं अपनी दृष्टि में नाम नहीं, केवल विशेषण हूँ।

किवाड़ बन्द करके आसन की ओर लौट पड़ती है।

पात्र – मल्लिका
नाटक – आषाढ़ का एक दिन
नाटककार –मोहन राकेश

वसंतसेना : निर्लज्ज है तू मेघ
जो आर्य के घर जाने के समय
गरज–गरजकर मुझे भयभीत कर रहा है
और अपनी धाराओं के हाथों से छू रहा है
हे इंद्र!
क्यों गरजता है मेघ?
मेरा मार्ग वर्षा से क्यों रोक रहा है?
एवं
इंद्र,
अहल्या के प्रेम में
तुमने अपने को गौतम बताया था,
आज मेरे दुःख को समझो
और इस मेघ को हटा लो!
एवं
गरज लो, बरस लो, या सौ–सौ वज्र गिरा लो इंद्र!
लेकिन आज मेरी राह
रोक पाना असंभव है।
एवं
मेघ बरसता है, बरसे
निष्ठुरता पुरुषों का स्वभाव ही है!
परंतु नारी हृदय का दुःख
विद्युत्,
क्या तू भी नहीं समझ पाती?

पात्र – वसंतसेना
नाटक – मृच्छकटिक
नाटककार –शूद्रक
रूपान्तरकार – मोहन राकेश

हैक्युबा : मुझे ऐसे ही रहने दो! मुझे किसी की मदद की ज़रूरत नहीं। मुझे किसी की हमदर्दी की ज़रूरत नहीं। जो मुसीबतें मैंने बर्दाश्त की हैं और जो कर रही हूँ, और जो अभी और करनी होंगी, उनके बोझ से चूर–चूर नहीं हो जाऊँगी तो क्या होगा ओ देवताओ! ... हाय रे! मुसीबतों से निजात के लिए मदद भी माँगते हैं तो किससे? – इन बेमुरब्बत देवताओं से! लेकिन मैं अपने दुःख की कहानी, पहले नहीं कहूँगी। मुझे, अपने खुशी के दिन याद आ रहे हैं। मैं एक शहज़ादी थी। एक शहज़ादे की दुल्हन बनी। ऐसे बेटों की माँ बनी, जिनके कारनामे सुनकर सिर फख़्र से तन जाता है। फ्रीगीया में कौन माँ ऐसी होगी, जो मेरी तरह, अपने शूरवीर बेटों की कहानी कह सके? मेरी जैसी खुशकिस्मत माँ, सारी दुनिया में नहीं होगी!

फिर वो वक़्त भी आया, जब मैंने अपने बेटों को एक–एक करके, यूनानी तीरों का शिकार होते देखा। अपने यह बाल नोंच–नोंचकर, एक–एक के जनाजे पर रखती गयी। मैंने उनके वालिद, प्रीयत की मौत की चोट सही। यह कानों–सुनी बात नहीं थी। मेरी इन्हीं फूटी आँखों ने देखा था। कैसे उसका सर, तन से जुदा कर दिया गया और वो हमारे, हिफाजत करनेवाले देवता की, इबादतगाह की सीढ़ियों पर गिर पड़ा। मैंने अपने शहर को खण्डर बनते देखा। मेरी फूलों–जैसी बेटियाँ, अरमानों की शहज़ादियाँ जो किसी ख़ाविन्द की आँखों का नूर बनकर रहतीं। मेरे शफ़क़त–भरे बाजुओं में से छीनकर ले जायी गयीं। वो मुझे कभी नहीं देखेंगी और मैं भी उनके दीदार की तमन्ना दिल में लिए ही रह जाऊँगी। मेरी बदबख्ती के मक़बरे पर, अभी एक पत्थर और रक्खा जायेगा।

पात्र – हैक्युबा
नाटक – ट्रोजन वीमेन /ट्रॉय की औरतें
नाटककार –यूरिपिडीज
रूपान्तरकार – जितेन्द्र कौषल